भाग-2

कुछ अपनी और शोध की बातें

प्रोफेसर एच.वाय. मोहन राम से सुजाता वरदराजन की बातचीत

पिछले अंक में प्रोफेसर मोहन राम ने अपने शैक्षणिक सफर के साथ-साथ शोधकार्य की ओर किस तरह प्रवृत्त हुए इसके बारे में बताया था। इस बार उनके विविध शोधकार्य के बारे में पढ़िए।

सुजाताः स्टुवर्ड की लैब में आपने किस प्रकार के प्रयोग किए?

मोहन रामः टिशू कल्चर का सारा काम मैंने स्टुवर्ड की तकनीकी सहयोगी मिसेस मॅरिअन ओ मेप्स से सीखा। साथ ही मैं स्टुवर्ड को उनके अनुसंधान में मदद भी करता रहा। अगले साल मेरी पत्नी मानसी को फुलब्राइट ट्रैवल ग्रांट मिली और वे भी वहाँ आ गईं। स्टुवर्ड चाहते थे कि हम केले की विभिन्न किस्मों का टिशू कल्चर करें और फिर विभिन्न पौध-वर्धन नियंत्रकों (plant-growth regulators) वाले पोषक माध्यमों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया में अन्तर का अध्ययन करें। मैंने यह काम शुरू किया और एफ.सी. स्टुवर्ड के साथ मिलकर केले के टिशू कल्चर पर पर्चा प्रकाशित करने वाला पहला व्यक्ति बना। बाद में, मुझे एहसास हुआ कि हमने गलत टिशू चुना था। ताज़ा अंकुरित कली से टिशू लेने की बजाय हमने अपरिपक्व फल के गूदे का टिशू इस्तेमाल किया था। आज 'प्लांट टिशू कल्चर' के द्वारा केले के

क्लोन तैयार किए जाते हैं। भारत की यह सफलतम उपलब्धि है।

केले दो प्रकार के होते हैं, बीजदार, न खाया जाने वाला और बिना बीज का जिसे हम खाते हैं। मानसी व मैंने, इन दोनों के बीच के संरचनात्मक अन्तरों का तुलनात्मक अध्ययन किया और उन टिशूज़ को खोज निकाला जिनसे गूदा तैयार होता है। एक ओर जहाँ अधिकांश फलों में बीज के चलते फल-वृद्धि होती है, वहीं केले में बीज बिना ही एक गूदेदार व मीठा फल तैयार हो सकता है। इस घटना को पार्थिनोकार्पी कहते हैं। हमारा काम भी स्टुवर्ड के साथ-साथ, वनस्पति-विज्ञान के 'ऐनल्स ऑफ बॉटनी', लंदन में प्रकाशित हुआ। हमारे इस काम का सन्दर्भ बार-बार लिया जाता है। स्टुवर्ड ने 1960 में मुझे एक महीने के लिए जमैका भेजा ताकि मैं वहाँ से टिशू कल्चर और जैव-रसायनिक विश्लेषण के लिए केले की तमाम किस्मों का संग्रह अपने साथ ले आ सकूँ। मैंने पूरा द्वीप छान मारा और वहाँ मैंने ऐतिहासिक पौधों के अलावा कुछ अजीब किस्म के पौधे भी देखे, खासकर कैप्टन ब्लाइ द्वारा टहिटी से स्पैनिश टाउन में लाए गए ब्रेडफ्रूट पौधे। ऍकी फल का नाम कैप्टिन ब्लाइ की स्मृति में 'ब्लाइआ सॅपिडा' रखा गया है। इसका पका हुआ फल मछली के साथ खाया जाता है।

अपनी उत्कृष्ट रिसर्च के लिए स्टुवर्ड ने काफी नाम कमाया। अपने सुगठित प्रयोगों के आधार पर उन्होंने पादप-कोशिकाओं में टोटीपोटेंसी (कोशिका-विभाजन सामर्थ्य, इसके बल पर कोशिका विभाजित होकर विशिष्ट कोशिकाओं का निर्माण करती है) का होना दर्शाया। प्रत्येक जीव, एक छोटी-सी कोशिका (निषेचित अण्डे) से शुरू होता है। एक मानव में करोड़ों कोशिकाएँ हो सकती हैं, और एक सिकुआ पेड़ (शंकुवृक्ष) में अरबों, पर वे सब एक जनन-कोशिका से ही उपजती हैं। जीवविज्ञान के सबसे बड़े प्रश्नों में से एक यही रहा हैः किस प्रकार एक कोशिका से विकसित हुई अन्य कोशिकाएँ समय और स्थान में एक-दूसरे से अलग-अलग हो जाती हैं और अलग-अलग क्षमताएँ विकसित करती हैं। क्या यह कुछ जींस के अप्रभावी हो जाने और कुछ अन्य विशेष जींसों के सक्रिय हो जाने के चलते होता है? क्या यह एक तात्त्विक क्षमता होती है या फिर यह प्राणी में कोशिका के स्थान या उसके वातावरण पर निर्भर करती है?

स्टुवर्ड ने किया यह कि दो मि.ग्रा. गाजर की जड़ के टुकड़े (यहाँ तक कि वे टुकड़े भी जिन्हें दो साल तक 4 डिग्री सेल्सियस पर रखा गया था) लेकर उन्हें जीवाणुपोषक पदार्थ तथा नारियल पानी के साथ एक खास प्रकार की डिज़ाइन वाली बोतलों में विकसित कर यह दिखाया कि पूरी तरह से विकसित कोशिकाओं को भी विभक्त होने के लिए प्रेरित किया जा सकता

है। जो कोशिकाएँ जीवाणुपोषी पदार्थ में अपने ऊपर से मृत ऊतकों की परत उतार फेंक सकीं, वे भ्रूण-सरीखे पिण्ड बना सकीं, जो फिर समान संघटन के 'अगार मीडियम' वाली नलियों में स्थानान्तरित करने पर गाजर के छोटे-छोटे पादपों में विकसित हुए। दूसरे शब्दों में कहें तो यद्यपि ये कोशिकाएँ गाजर की जड़ की कोशिकाओं से पूरी तरह अलग कोशिका बन चुकी थीं और हमारे भोजन का हिस्सा भी बन जातीं, फिर भी एक समूचे पौधे को नए सिरे से पैदा करने की सामर्थ्य उनमें बरकरार थी। तत्पश्चात होने वाली खोज से पता चला कि जर्मनी में रेनर्ट ने भी स्वतंत्र रूप से इसी परिघटना को दर्शाया था। इन अध्ययनों के चलते दुनिया भर में बड़े पैमाने पर अनुसंधानों का दौर चला।

अगस्त 1960 में जब मैं भारत लौटा, तो महेश्वरी ने सबसे पहली बात मुझसे कही, "अब तुम्हें रिसर्च गाइड बन जाना चाहिए, क्योंकि तुम नए-नए विचार लेकर आए हो।" शुरुआती दो-तीन साल मैं छात्रों का चयन करने व उन्हें गाइड करने में काफी व्यस्त रहा। हमने टिशू कल्चर व प्रजनन जैविकी पर कुछ काम करना शुरू किया। लेकिन मेरी रुचियाँ हमेशा ही विविध रहीं।

पौधे में लिंग-अभिव्यक्ति का अध्ययन

सुजाताः कुछ ऐसे प्रोजेक्ट जिन पर काम करते वक्त आपको बड़ा मज़ा आया।

मोहन रामः एक चीज़ जिसमें हमें वाकई मज़ा आया वह थी कॅनाबिस प्लांट (भांग के पौधे) में लिंग-अभिव्यक्ति का अध्ययन। जानवरों, खासकर स्तनधारियों के विपरीत, सामान्यतया पौधे एकलिंगाश्रयी (dioecious) नहीं होते : एकलिंगाश्रयी का मतलब है कोई व्यक्ति पूरी तरह से या तो नर है या मादा। इस तरह की स्थिति आप आम तौर पर पौधों में नहीं देखते। एक ही फूल में, या एक ही पौधे के अलग-अलग फूलों में, आपको दोनों प्रकार के लिंग दिखेंगे। लेकिन स्तनधारियों में लिंग-निर्धारण का एक गुणसूत्रीय आधार होता है। सबसे आम स्थिति होती है, XX (मादा) व XY (नर)। एक्स-शुक्राणु यदि एक्स-अण्ड से मिलता है, तब आपको XX यानी कि मादा सन्तान मिलेगी। और अगर वाई-शुक्राणु जाकर एक्स-अण्ड से मिल गया तो आपकी सन्तान नर यानी कि XY पैदा होगी। पुष्पधारी पौधों की तकरीबन 13 प्रजातियाँ ही ऐसी हैं जिनमें लिंग-निर्धारण का एक साफ-साफ गुणसूत्रीय आधार होता है। एकलिंगाश्रयी पौधों की अन्य सैकड़ों प्रजातियाँ ऐसी होती हैं जिनमें लिंग-गुणसूत्र होते ही नहीं बल्कि इनमें

भांग का पौधा और उसके नर और मादा फूल

नर फूल

मादा फूल

लिंग-निर्धारण जीन-स्तर पर होता है। भांग का पौधा (कॅनाबिस सटाइवा) ऐसा ही पौधा है और इसी कारण हमने उसे चुना भी। इसे चुनने का एक और कारण था कि भारत के बाहर किसी के लिए भी इस पौधे पर काम करना आसान नहीं है, क्योंकि मैरिजुआना का स्रोत होने के चलते यह एक प्रतिबन्धित पौधा है। भारत में यह इतना आम है कि जंगलों से इसे जुटाने और इस पर काम करने से आपको कोई नहीं रोकेगा (इसी पौधे से हमें भांग, गांजा व चरस मिलते हैं)। कॅनाबिस का महत्व इसलिए भी बढ़ता जा रहा है क्योंकि इसका मादा पौधा कॅनाबिनॉइड्स के मामले में ज़्यादा

जननक्षम है। इसमें पाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ स्तनधारियों के मस्तिष्क व गर्भाशय में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, और 'परमआनन्द', यूफोरिया का एहसास जगाने के चलते इसे नाम दिया गया है 'आनन्दमाइड'।

अब चूँकि कॅनाबिस में हमें कभी अ-समान गुणसूत्र या लिंग-गुणसूत्र मिले ही नहीं, सो हम जानना चाहते थे कि क्या हम बाहर से हॉर्मोन्स का इस्तेमाल कर लिंग-उलटाव ला सकते हैं कि नहीं। इस काम में, पहले वी.एस. जायसवाल और फिर बहुत बाद में रीना सेठ (दोनों ही मेरे विद्यार्थी) मेरे सहयोगी रहे। हम लोगों ने पौधों को पनपने दिया और फिर ज्योंही उनके पहले-पहले फूल खिले, नर एवं मादा के हिसाब से उन्हें अलग-अलग किया। बात यह है कि जब तक इनके फूल नहीं खिलते, तब तक आप इनके नर और मादा के बीच फर्क नहीं बता सकते। फिर हमने आनुवांशिक रूप से मादा पौधों को जिबर्लिन्स (संक्षेप में जी.ए.) से उपचारित किया। जी.ए. हॉर्मोन्स के ऐसे समूह हैं जिन्हें जापानी वैज्ञानिकों ने धान के बीजांकुरों में पाया था। जी.ए. द्वारा किए जाने वाले प्रभावशाली कामों में से एक है आनुवांशिक रूप से बौने पौधों की लम्बाई बढ़ाना। अब तक कोई 50-60 जिबरलिन ज्ञात हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जी.ए. 3 (GA_3) या जिबर्लिक एसिड। जब हमने एक मादा कॅनाबिस की नोक पर रुई के फाहे से जी.ए. 3 लगाया तो उसने नर पुष्प खिलाना शुरू कर दिया, जो हूबहू आनुवांशिक रूप से नर पादपों पर खिलने वाले फूलों की तरह थे। और फिर जब हमने देखा कि बीजों पर पुंकेसर निकल आए हैं, तब तो हम हक्के-बक्के ही रह गए।

अगले चरण में, हमने नर पौधे (जो बीज नहीं बनाते) लिए और उन पर इथेफॉन (एक प्रकार का एंटी-जिबर्लिन) के छिड़काव के ज़रिए उन्हें उर्वर मादा पुष्पों के साथ-साथ बीज भी बनाने को प्रेरित कर सके। पौधों द्वारा अवशोषित किए जाने पर इथेफॉन (2-क्लोरोइथाइल फॉस्फोनिक एसिड) ऊतकों में एथिलीन गैस छोड़ता है, जो एक गैसीय हॉर्मोन की तरह काम करता है।

सुजाताः आपको जिबर्लिन इस्तेमाल करने का खयाल कैसे आया?

मोहन रामः कद्दू (cucurbits) पर इज़राइली वैज्ञानिकों की एक रिपोर्ट थी। कद्दू एकलिंगाश्रयी नहीं होते। वे ऐसे पौधे हैं जो एक ही पिण्ड में नर व मादा पुष्प खिलाते हैं। लेकिन हमने जब यही प्रयोग एक अन्य पादप, फिलैंथस फ्रैटर्नस, संस्कृत में भूम्यमलाकी (आँवले की एक प्रजाति जो ज़मीन के नज़दीक उगती और फैलती है। इसे पीलिया के उपचार में

प्रभावी माना जाता है) पर किया तो हमें फूल का लिंग-परिवर्तन करने में सफलता नहीं मिली। हम नहीं जानते कि कॅनाबिस पौधे में भला ऐसी कौन-सी खूबी है। फिलैंथस में पहली चार पर्णसन्धियाँ (नोड्स, नोड वह बिन्दु है जहाँ कोई पत्ती उभरती है) नर अनुक्षेत्र बनाती हैं। बाकी अन्य पत्ती-ऐक्सिलों पर केवल मादा फूल ही खिलेंगे।

लैंटाना झाड़ियाँ

एक और काम जिसने हमें खूब लुभाया, वह था लैंटाना कॅमरा (एक प्रकार का फूलदार पौधा) पर हमारे द्वारा किया गया काम। इसकी खासियत यह है कि यह बहुत ही सरल व परिष्कृत तरीकों से बहुत थोड़े-से पैसे में किया जा सकता है। हुआ यह कि दिल्ली यूनिवर्सिटी के कैम्पस में घुमक्कड़ी करने के दौरान मुझे कुछ ऐसी लैंटाना झाड़ियाँ मिलीं जिन पर रंगबिरंगे फूल खिले थे। मैं नहीं जानता था कि वे अलग-अलग रंगों वाले फूल थे या फिर एक ही फूल समय के साथ अपना रंग बदलता है। जब मैंने अपनी एक विद्यार्थी, गीता माथुर से यह सुनिश्चित करने को कहा तो वह भी काफी खुश हुई। उसने यह पता लगाया कि ताज़ा-ताज़ा बने फूल पीले होते हैं, अगले दिन वे नारंगी, तीसरे दिन सिन्दूरी, और बाद में वे गहरे मैजेंटा रंग में बदल जाते हैं। समय और रंग-परिवर्तन लाने वाली घटनाओं के बीच क्या रिश्ता है, यह हमें मालूम न था। हमें पता चला कि कुछ खास प्रकार के कीट व पक्षी इन फूलों का परागण करते हैं। इनमें से एक तो जैव विकास की दृष्टि से कम विकसित (very lowley evolved) कीट हैं जिन्हें थ्रिप्स (एक कीट) कहते हैं। कीटविज्ञानी यह तो जानते हैं कि थ्रिप्स फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं पर उन्हें यह विश्वास ही न था कि थ्रिप्स रंगों में भेद कर सकते हैं और परागण भी करते हैं।

मैंने गीता से कहा, "चलो बाज़ार चलते हैं।" हम फूल साथ लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के करीब वाले कमलानगर में एक जानी-मानी कपड़ों की दुकान पर गए। अपने साथ लाए फूलों को हम कपड़ों के संग रखकर उनकी मैचिंग करते गए और जो कपड़े रंग में फूलों से हूबहू मिलते थे उनमें से कुछ हमने खरीद लिए। हमने विभिन्न रंगों की चकतियाँ बनाईं और फिर उन्हें पेट्री प्लेट्स में रखकर उन पर शक्कर के घोल का लेप लगाया। इसके बाद हमने इसके अन्दर कुछ थ्रिप्स छोड़कर एक बड़ी पेट्री प्लेट से ढक दिया। आप विश्वास करें न करें, सारे-के-सारे कीट पीले रंग की चकतियों की ओर गए। इस सरल से प्रयोग ने हमें जतला दिया कि खाना सामने होने के बावजूद थ्रिप्स रंग को ज़्यादा महत्व देते हैं। तितलियाँ, लैंटाना

लैंटाना कॅमरा: हमारे आसपास आसानी से दिखाई देने वाला झाड़ीदार पौधा।

की केवल मौसमी मेहमान होती हैं और फूलों के परागण किए बिना ही उनका मधुरस पी जाती हैं। वहीं दूसरी ओर थ्रिप्स फूलों में प्रवेश करते हैं और वर्तिकाग्र के चिपचिपे रिसाव को अपना भोजन बनाते हैं। फूल की संरचना ही ऐसी होती है कि थ्रिप्स निरपवाद रूप से उनका परागण करते हैं। रंग तो वास्तव में विज्ञापन है, पुरस्कार मधुरस है या पराग। यह काम वास्तव में तो आसान रहा, पर इसे करने में हमें आनन्द खूब मिला।

सुजाता: किसके चलते पीले फूल अपना रंग बदलते हैं?

मोहन राम: हमने दिखलाया कि यदि एक सिरिंज के द्वारा वर्तिकाग्र पर केवल दो पराग कण ही रख दिए जाएँ तो वे पराग, पंखुड़ियों में एंथोसायनिन संश्लेषण शुरू करा देने में सक्षम होते हैं, जो रंग बदलने का कारण बनता है। वास्तव में पीला फूल जिसमें बीटा-कैरोटिन की अधिकता थी, डेल्फिनिडिन मोनोग्लूकोसाइड से ढँक जाता है जो कि नीले रंग का होता है।

जलीय पौधों में रुचि

सुजाता: जलीय पौधों में आपकी रुचि क्योंकर जागी? आपने कौन-कौन-सी नई चीज़ें खोजीं?

मोहन राम: आपको बता दूँ कि दुनिया में कोई 2,50,000 फूलदार पौधे हैं

(जानवरों की तुलना में संख्यात्मक हिसाब से कम)। इनमें से दो प्रतिशत पौधे हमें पानी में मिलते हैं। जैसा पता ही है कि जीवन की उत्पत्ति पानी में हुई और वो पानी से ज़मीन की ओर आया। ये पौधे थल से पानी में वापसी कर गए, और जलीय जीवन में फिर से ढलने में वे अनेक अनुकूली परिवर्तनों से गुज़रे हैं, प्राकृतिक विकास के लिहाज़ से जो बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हैं। हमारी रुचि उनके इन्हीं पहलुओं का अध्ययन करने में है। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि दुनिया भर के मीठे पानी के कुल फूलदार पौधों में से कोई 50 फीसदी पौधे अकेले हमारे भारतीय उपमहाद्वीप में ही पाए जाते हैं।

कुछ पौधे ऐसे भी होते हैं जो एकाधिक प्रकार की पत्ती पैदा करते हैं। इनमें से एक क्लासिकल पौधा है लिम्नोफिला हेटरोफिला (परिवर्तित नाम लिम्नोफिला एरोमैटिका)। पानी के ऊपर पत्तियाँ जोड़ों में मिलती हैं, एक-दूसरे से समकोण बनाते हुए। जबकि पानी के अन्दर की पत्तियाँ चक्करदार होती हैं (एक अकेले नोड से बहुतेरी पत्तियाँ निकलती हैं) और अत्यन्त कटी-फटी या भाजित (dissected) होती हैं। पानी के नीचे पौधे पर फूल आते ही नहीं। फूल बनने के लिए डण्ठल का पानी के ऊपर होना ज़रूरी है और उस पर पत्तियाँ भी पूरी की पूरी आनी चाहिए, न कि डाइसेक्टिड। इस विशिष्टिता का बखान तो हम बदस्तूर किए आ रहे थे पर इसका खुलासा हमारे पास न था। सो हमने तय किया कि एक क्लासिकल उदाहरण लेकर इस प्रक्रिया को समझना उचित होगा। जो वनस्पतिशास्त्री पानी के बाहर निकले हुए हिस्से को नहीं देखते, तो वे एक भिन्न पौधे की तरह इसका वर्णन कर देते। दरअसल, वर्गीकरण विज्ञानियों ने तो इस पौधे को बहुत-से कुलों (family) में डाल रखा है!

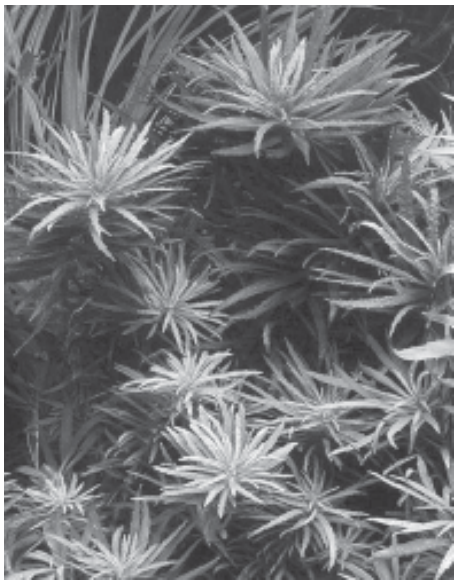
लिम्नोफिला एरोमैटिका

मेरी छात्र, सुनन्दा राव और एक

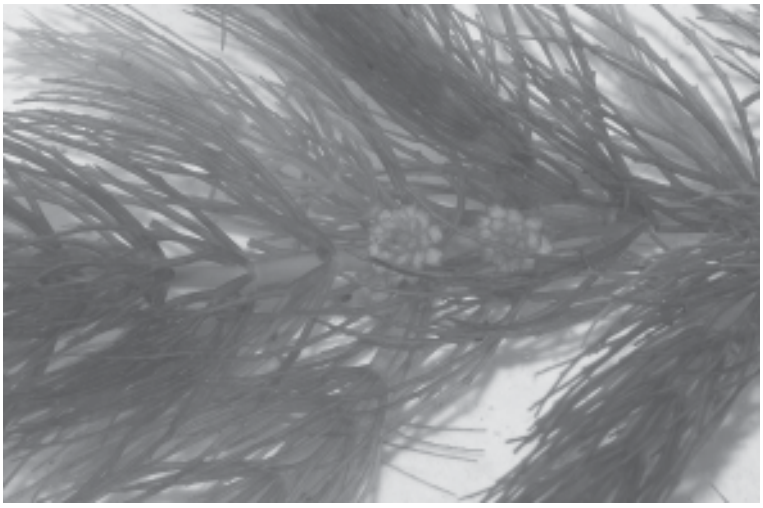

सेरैटोफाइलम डिमर्सम

अन्य शोधार्थी, माउंट आबू की झील से जीवित पौधे लाने के लिए गए। मैंने सोचा, "इस उल्लेखनीय बदलाव का कारण भला क्या होगा? क्या तनाव के चलते यह प्रेरित होता है?" क्योंकि जो हिस्सा पानी के बाहर है, वह शुष्कता व चमचमाते प्रकाश के प्रभाव में आता है, जबकि पानी के भीतर ताप व प्रकाश की तीव्रता भी कम ही होती है। सो, यह प्रयोग झील में करने की बजाय हमने जर्महीन (aseptic) परिस्थितियों में द्रव पौष्टिक माध्यम से पौधे उगाने की सोची। फिर हमने स्ट्रेस हॉर्मोन के द्वारा पर्ण-विन्यास में कुछ बदलाव लाना तय किया। इसके लिए हमने टिशू कल्चर प्रयोगशाला की संवर्धन बोतलों (कल्चर फ्लास्क) में एब्सिज़िक एसिड चुना [ए.बी.ए., एक वृद्धि-अवरोधक है जो कलियों को सुषुप्तावस्था में ले जाता है और विलगन (abscission) पैदा करता है। यह जिबर्लिन-रोधी के बतौर भी काम करता है]। इसके अलावा ऑस्मोटिक प्रेशर यानी परासरणी दबाव बढ़ाने के लिए हमने मैनिटॉल व अन्य कारक भी इस्तेमाल किए। पूर्वानुमान अनुसार ही, ए.बी.ए. के चलते पानी के ऊपर हवा में पत्तियाँ पैदा हुईं और पानी के नीचे भी फूल खिलने लगे। हमने दिखाया कि स्ट्रेस हॉर्मोन के द्वारा पर्ण-विन्यास में परिवर्तन प्रेरित किया जा सकता है, जो पुष्पण से जुड़ा हुआ है।

इसके पहले हमने सेरैटोफाइलम डिमर्सम जैसे कुछ अन्य जलीय तंत्रों पर

काम (अनीता सहगल द्वारा) किया था। यह जलमग्न, मुक्त रूप से तैरने वाला एक जड़हीन पौधा है जिसमें नर व मादा, दोनों फूल एक ही पौधे में होते हैं। नर फूल के पुंकेसरों की सँख्या विशाल होती है। परिपक्व होने पर पुंकेसर अलग होकर तैरते-तैरते सतह पर आ पहुँचता है, जहाँ वह फटकर बहुत ही अधिक सँख्या में पराग कण छोड़ता है। ये कण अंकुरित होकर नलिकाएँ विकसित कर लेते हैं जो मादा फूलों की तलाश में नीचे आकर उन्हें निषेचित करती हैं। यह पानी में एक तरह का 3-डी परागण है, कुछ इस तरह जैसे एक पनडुब्बी द्वारा जहाज़ों को टॉरपीडो से ध्वस्त कर देना।

फ्लास्क के पेंदे में हमें काफी पपड़ियाँ-सी दिखीं। अनीता बोली, "सर, मेरे फ्लास्क में संक्रमण हो गया है। मैं इसे फेंक देना चाहती हूँ।" कभी-कभी संवर्धनों (कल्चर्स) में कवकजाल यानी फंगल माइसीलिया उगने लगते हैं। मैंने कहा, "मत फेंकना। हो सकता है वह फंगस न हो। हो सकता है इनमें पराग नलिकाएँ हों।"

बारीकी से देखने पर हमें हज़ारों पराग नलिकाएँ मिलीं, और सब की सब गिरी-पड़ी हालत में थीं। एक झील में यह कैसे हो सकता है? मीठे पानी में परागण के कोई ज़्यादा उदाहरण नहीं हैं, और सेरैटोफाइलम के मामले से हम काफी बौराए हुए थे। लेकिन जिस एक चीज़ ने हमें मंत्रमुग्ध कर दिया था, वह था सेरैटोफाइलम का फल। यदि आप इसे खोलें, बीज की बजाय आपको एक नन्हा-सा अंकुर मिलेगा जिसमें पत्तियों के 14 आवर्त होते हैं, और कभी-कभी एकाध शाखा भी देखने को मिल सकती है! जड़ें तो होती ही नहीं। हमारी जानकारी में, किसी और वनस्पतिशास्त्री ने किसी अन्य पौधे के बीज के अन्दर ऐसे उन्नत अंकुरण के बारे में कहीं बताया नहीं है। मैनग्रोव सजीव प्रजनन दर्शाते हैं (विविपैरी, ऐसी दशा जिसमें भ्रूण अपने विकास के दौरान ही बीजावरण तोड़कर फल की पर्त से बाहर निकल आता है, जबकि उस वक्त भी वह अपने जनक पौधे से जुड़ा रहता है)। दरअसल (मैनग्रोव में), वह जड़ ही होती है जो कि एक लम्बी संरचना के रूप में बाहर आती है और रेत में प्रवेश कर एक नए पौधे का रूप धारण कर लेती है।

टिशू कल्चर में सेरैटोफाइलम पर जब ये सारे प्रयोग किए जा चुके थे, तभी हमें एकदम अलग प्रकार के फल दिखे। जिनका हम संवर्धन कर रह थे उन फलों से ये फल इतने अलग थे कि हम बोल उठे, "अरे हमारी नज़रों के नीचे ही यह हेर-फेर कैसे हो गया!" यह तो साफ था कि हमने अपने संग्रह में सेरैटोफाइलम की एक अलग प्रजाति का एकाध नमूना इकट्ठा कर

लिया था। फील्ड में तो हमें यह पौधा दिखा नहीं, पर लैब में संवर्धन के समय हम इसे देख पाए। स्पष्ट तौर पर हम इन दोनों के बीच के जुड़ाव को समझने में चूक गए थे। भारतीय वनस्पतियों की किसी भी पुस्तक में मुझे इस पौधे का वर्णन नहीं दिखा। मैंने पूर्ण रूप से विकसित कुछ पौधे लेकर उनकी हर्बेरिअम शीट्स बनाईं और फिर उन्हें वॉशिंग्टन डी.सी. के स्मिथसोनिअन इंस्टिट्यूट ले गया। उन्होंने मुझे बताया कि यह *सेरैटोफाइलम एकाइनेटम*, एक उत्तर अमेरिकी प्रजाति है। तो फिर यह भारत में किस प्रकार आ गई? हो सकता है यह प्रवासी परिन्दों के ज़रिए यहाँ आए हों। असल में, यह टिशू कल्चर फ्लास्क में एक नया-नवेला पौधा खोज लेने की पहली रपट थी। जब हमने इसे प्रकाशित किया तो हमारे सहयोगी इस पर विश्वास ही न कर सके।

इस प्रकार, तरह-तरह की किस्मों के पौधे विकसित करने की प्रक्रिया में हमारा सामना ढेर दिलचस्प वाकयों से हुआ, एक दिलचस्प मोड़ हमें किसी दूसरे दिलचस्प रास्ते पर ले जाता। मुझे नहीं मालूम कि हमारी इन तमाम खोजों का कहीं कोई मतलब भी है या नहीं, पर एक बात तो है कि उन सब के अवलोकन में हमें मज़ा तो खूब आया।

विज्ञान के अलावा कुछ और शौक

सुजाताः आपके कुछ और शौक?

मोहन रामः वनस्पतिशास्त्र और विज्ञान के अलावा, मेरे तीन-चार शौक हैं। एक तो संगीत, दूसरा फोटोग्राफी, और तीसरा शौक क्रिकेट। मैंने कभी राज्य स्तर पर या किसी लीग के लिए तो क्रिकेट नहीं खेला, इसके बावजूद मैं क्रिकेट फैन हूँ और अपना बहुत सारा समय क्रिकेट के महत्वपूर्ण मैच देखने और उनका आनन्द लेने में बिताया है।

मेरे पिता, एच. योगनरसिंहन संस्कृत विद्वान, शिक्षाशास्त्री, लेखक व संगीतज्ञ थे। हालाँकि वे पेशेवर संगीतज्ञ नहीं थे। उनका मानना था कि संगीत एक महत्वपूर्ण कला है मगर वह उतना ही महान पेशा हो ऐसा नहीं है। यह खासतौर पर उन दिनों की बात है जब संगीत को लोगों का आश्रय या संरक्षण प्राप्त नहीं था। मेरे पिता अधिकांशतः तो स्वयं-शिक्षित थे, लेकिन आगे चलकर उन्होंने वासुदेवाचार्य को अपना गुरु बनाया। पुरन्दरा दास के बाद वासुदेवाचार्य कर्नाटक के सबसे महान संगीतकार थे। हर शनिवार हमारे घर पर मेरे पिता का गायन होता, और उनके संगीताभ्यास के दौरान भी यदा-कदा हमें उन्हें सुनने का मौका मिलता। उन्हें सुन-सुनकर ही हमने बहुत-सी 'कृतियों' को गाना सीखा। मैं आपको बता दूँ

कि मैं ठीक-ठाक गा लेता हूँ और लोग समय-समय पर मुझे प्रार्थनाओं, सभाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में गायन के लिए बुलाते भी रहे हैं। काश! मुझे संगीत के मूलतत्वों का बेहतर ज्ञान होता। मैं बचपन से ही अनेक महान संगीतज्ञों को सुनता रहा हूँ।

जहाँ तक फोटोग्राफी का सवाल है तो मैं कोई पेशेवर फोटोग्राफर तो नहीं हूँ। कोई तेरह बरस की उम्र से मैंने बॉक्स कैमरे से तस्वीरें लेनी शुरू कीं। बच्चे मेरी तस्वीरों का मजमून होते थे। आज मेरे पास, मेरे पुत्र राहुल द्वारा दिया गया एक डिजिटल कैमरा है। मेरी तस्वीरों में ज़्यादातर पेड़, जंगल, सब्ज़ी हाट बाज़ार, फूल-पत्ते वगैरह होते हैं। मेरे पास स्लाइड्स का भी अच्छा-खासा कलेक्शन है। इन दिनों मैं जो काम कर रहा हूँ उनमें से एक है भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के लिए कुछ दिलचस्प व उपयोगी पेड़-पौधों पर सी.डी. बनाने का काम। बच्चों को पढ़ाने का सबसे अच्छा तरीका है कि उन्हें फील्ड-ट्रिप्स पर भ्रमण के लिए ले जाया जाए। पढ़ाने का दूसरा तरीका है बढ़िया क्वालिटी के चित्र दिखाकर व कहानियाँ सुनाकर।

सुजाताः विद्यार्थियों में वनस्पतिशास्त्र के प्रति रुचि जगाने के लिए क्या किया जाना चाहिए?

मोहन रामः आप अगर ऑस्ट्रेलिया या यूरोप जाएँ तो आपको वहाँ के अधिकांश शहरों में सुन्दर उद्यान मिलेंगे। एक उद्यान केवल पौधों का संग्रह भर नहीं होता, उसमें विज्ञान भी शुमार होता है। ये शिक्षाप्रद और ज्ञानवर्धक होते हैं। एक छोटा बच्चा जब माइक्रोस्कोप से किसी मांसाहारी (कीटभक्षी) पौधे को, एक रंग-बिरंगे ऑर्किड फूल या फिर एक पानी की बूंद को ही देखता है, तब उसे जो आनन्द मिलता है, उसका तो कोई जवाब ही नहीं! सो अपने बच्चों को जिज्ञासु बनाने के लिए हमें ऐसे अवसर, ऐसी सम्भावनाएँ बनानी होंगी। डिस्कवरी वॉक के द्वारा वे जीवित पौधों व जीवों से रूबरू हो सकते हैं। इसके अलावा, नेचुरल हिस्ट्री म्यूज़ियम व साइंस म्यूज़ियम का विस्तार कर उन्हें जीवन्त बनाना भी ज़रूरी है ताकि जिज्ञासा उत्पन्न हो, उत्तेजना भरा एक माहौल बने और गहरी प्रेरणा मिले। इसके लिए हमें प्रबुद्ध शिक्षक व मार्गदर्शक चाहिए होंगे। ज़रूरी नहीं कि शिक्षक पीएच.डी. हों। एक स्कूल टीचर भी सरल प्रयोगों और पौधों से प्राप्त यौगिकों व उनके सार-तत्वों के द्वारा अन्वेषण की प्रवृत्ति पैदा कर सकता है।

वनस्पतिशास्त्र अगर कुछ ऐसे उदाहरणों से पढ़ाया जाए जो बहुत आम न हों या जिनकी व्याख्या आसानी से न की जा सके तो हो सकता है कुछ

बच्चे इस ओर आकर्षित हों। लेकिन इस तरह की कोई कोशिश होती तो नहीं दिखती।

प्रकृति कैसे काम करती है, इसे जानने-समझने के लिए मेरे हिसाब से केवल किताबें व कक्षाएँ ही काफी नहीं हैं। अभी हाल ही में क्यू स्थित 'रॉयल बॉटैनिक गार्डन्स, मेरा (चौथी बार) जाना हुआ। प्रिंसेस डायना द्वारा उद्घाटित इसकी कंसर्वेटिरी में कुछ कीटभक्षी, गूदेदार, अरबी कुल के पौधों व जलीय पौधों समेत विविध पारिस्थितिकी तंत्रों (इकोसिस्टम्स) से आए अद्भुत व रोचक पौधे हैं। हेडफोन लगाकर आप पेड़ों के भीतर पानी का जड़ से तने और फिर शाखाओं तक जाना सुन सकते हैं। हमें अपने प्राकृतिक संग्रहालयों में जीवाष्मों के साथ-साथ सजीव पौधों, जन्तुओं की ज़रूरत तो है ही, साथ ही शिक्षक भी हमें ऐसे चाहिए जो स्वयं ऊर्जावान और उत्साही हों।

एच.वाय. मोहन रामः प्लांट ग्रोथ एंड डेवलपमेंटल तथा इकोनॉमिक बॉटनी में विशेषज्ञता। केला, बांस, दलहन एवं इमारती लकड़ी वाले वृक्षों पर काम किया है। अनेक सम्मान एवं अवार्ड भी प्राप्त हुए हैं।

सुजाता वरदराजनः येल युनिवर्सिटी, कनेक्टिकट, अमरीका से मॉलिक्युलर बायोफिज़िक्स एंड बायोकेमेस्ट्री में पढ़ाई की है। स्वतंत्र लेखक हैं। योग और कविताओं सहित विविध अभिरुचियों की धनी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः मनोहर नोतानीः शिक्षा से स्नातकोत्तर इंजीनियर। पिछले 20 वर्षों से अनुवाद व सम्पादन उद्यम से स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं। भोपाल में रहते हैं।

मूल लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक, अक्टूबर 2009, खण्ड 14 में प्रकाशित हुआ था।